[2019] 12 एस. सी. आर 861

कृष्ण प्रसाद वर्मा (डी) कानूनी प्रतिनिधियों के द्वारा

बनाम्

बिहार राज्य और अन्य

सिविल अपील सं. 8950/2011

सितंबर 26,2019

[दीपक गुप्ता और अनिरुद्ध बोस, न्यायमूर्तिगण]

न्यायपालिकाः

न्यायिक सेवा-न्यायिक अधिकारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही-दो आरोपों पर (i) उच्च न्यायालय के आदेश पर ध्यान दिए बिना जमानत देना और (ii) गवाहों की अपरिस्थित सुनिश्चित किए बिना साक्ष्य को बंद करना-कदाचार का दोषी पाया जाना-स्वामित्व-अभिनिर्धारित:संविधान का अनुछेद 235 अधीनस्थ न्यायालयों का नियंत्रण उच्च न्यायालय पर निहित करता है-अधीनस्थ न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए उच्च न्यायालय अपने प्रशासनिक नियंत्रण में आने वाले न्यायाधीशों के संरक्षक और संरक्षक भी हैं। अधीनस्थ न्यायालयों की स्वतंत्रता सुनिश्चित के लिए - केवल गलत आदेश पारित करने के कारण न्यायिक अधिकारियों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए जब तक कि कदाचार, बाहरी प्रभाव, किसी भी प्रकार की संतुष्टि आदि के स्पष्ट आरोप न हों-गलत आदेश पारित करने के लिए उचित कार्रवाई प्रशासनिक पक्ष में इसे दर्ज करना और इसे संबंधित अधिकारी के सेवा अभिलेख पर रखना होगा और ऐसे अधिकारी के कैरियर की प्रगति पर विचार करते समय इसे ध्यान में रखा जा सकता है-यदि गलत या अवैध आदेशों का निरंतर प्रवाह होता है, तो उचित कार्रवाई होगा न्यायिक अधिकारी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करना-वर्तमान मामले के तथ्यों में, अपराधी अधिकारी को कदाचार का

दोषी नहीं ठहराया जा सकता है-अपराधी अधिकारी के खिलाफ पारित आदेश रद्द कर दिए जाते हैं-भारत का संविधान-अनुछेद 235।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया

1.1 कानून का राज नहीं हो सकता, लोकतंत्र तब तक नहीं हो सकता जब तक कि एक मजबूत, निडर और स्वतंत्र न्यायपालिका न हो।यह स्वतंत्रता और निर्भीकता न केवल उच्चनतर न्यायालयों के स्तर पर बल्कि जिला न्यायपालिका से भी अपेक्षित है। इसलिए, यह महत्वपूर्ण है कि जिला स्तर पर और तालुका स्तर पर न्यायपालिका पूरी तरह से ईमानदार, निडर और किसी भी दबाव से मुक्त हो और किसी भी तरफ से किसी भी दबाब से प्रभावित हुए बिना केवल फाइल में मौजुदा तथ्यों के आधार पर मामलों का फैसल करने में सक्षम हो [पारा 1 और 2] [864-एच; 865-ए-बी]

1.2 भारत के संविधान का अनुच्छेद 235 अधीनस्थ न्यायालयों का नियंत्रण उच्च न्यायालयों को देता है। उच्च न्यायालय न्यायालयों पर अनुशासनात्मक शक्तियों का प्रयोग करते हैं। उच्च न्यायालय अपने प्रशासनिक नियंत्रण में आने वाले न्यायाधीशों के अभिभावक और संरक्षक भी होते हैं।सिर्फ गलत आदेश पारित होने से न्यायिक अधिकारियों के खिलाफ कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि भ्रष्टाचार को कतई बर्दाश्त नहीं किया जाना चाहिए और यदि भ्रष्टाचार, कदाचार या न्यायिक अधिकारी के लिए अनुपयुक्त कृत्यों के आरोप हैं, तो इनसे सख्ती से निपटा जाना चाहिए। हालाँकि, यदि गलत आदेश पारित किए जाते हैं तो अनुशासनात्मक कार्रवाई नहीं होनी चाहिए जब तक कि इस बात का सबूत न हो कि गलत आदेश बाहरी कारणों से पारित किए गए हैं और न कि फाइल पर मौजुदा तथ्यों के कारण। यदि कोई न्यायिक अधिकारी इस तरह से कार्यवाही करता है जो उसकी प्रतिष्ठा या सत्यनिष्ठा को दर्शाता है या अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते समय उसकी ओर से लापरवाह दुराचार दिखाने के लिए प्रथम दृष्टया सामग्री है, तो उच्च न्यायालय अनुशासनात्मक मामले शुरू करने का हकदार होगा, लेकिन ऐसी सामग्री आदेशों से स्पष्ट होनी चाहिए और अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान अभिलेख पर भी रखी जानी चाहिए [कंठिका 3,4 और 8] [865-सी-एफ; 868-डी]

1.3 ऐसा नहीं है कि यदि कोई न्यायिक अधिकारी गलत आदेश देता है, तो कोई कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए। यदि कोई न्यायिक अधिकारी ऐसे आदेश पारित करता है जो तय किए गए कानूनी मानदंडों के खिलाफ हैं, लेकिन इस तरह के आदेश पारित करने के लिए किसी भी बाहरी प्रभाव का कोई आरोप नहीं है, तो उच्च न्यायालय को ऐसी सामग्री को प्रशासनिक पक्ष में दर्ज करना चाहिए और इसे न्यायिक अधिकारी के सेवा अभिलेख पर दर्ज करना चाहिए। संबंधित न्यायिक अधिकारी के जीवनवृति उन्नयन पर विचार करते समय इन मामलों को ध्यान में रखा जा सकता है।एक बार जब गलत आदेश पर ध्यान दिया जाता है और वे सेवा पुस्तिका का हिस्सा बन जाते हैं तो इन्हें चयन ग्रेड, पदोन्नति आदि से इनकार करने के लिए ध्यान में रखा जा सकता है और यदि गलत या अवैध आदेशों का निरंतर प्रवाह होता है तो नियमो के अनुसार उचित कार्रवाई कर न्यायिक अधिकारी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करना होगा।जब तक कदाचार के स्पष्ट आरोप नहीं हैं, बाहरी प्रभाव, किसी भी प्रकार की संतुष्टि आदि, अनुशासनात्मक कार्यवाही केवल इस आधार पर शुरू नहीं की जानी चाहिए कि न्यायिक अधिकारी द्वारा गलत आदेश पारित किया गया है या केवल इस आधार पर कि न्यायिक आदेश गलत है। [कंठिका 16] [871-ई-एच] ए

> ईश्वर चंद जैन बनाम पंजाब और हरयाणा उच्च न्यायालय और अन्य (1988) 3 एस. सी. सी. 370:[1988] 1 पूरक।एससीआर 396; भारत संघ और ओ. आर. एस. बनाम ए. एन. सक्सेना (1992) 3 एससीसी 124:[1992] 2 एससीआर 364; भारत संघ और अन्य बनामके. के. धवन (1993) 2 एससीसी 56:[1993] 1 एससीआर 296; पी. सी. जोशी बनाम यू. पी. राज्य और अन्य (2001) 6 एससीसी 491:[2001] 1 पूरकएससीआर 369;रमेश चंदर सिंह बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय और अन्य (2007) 4 एससीसी 247: [2007] 3 एस. सी. आर. 198-पर आधारित था।

2.1 वर्तमान मामले में अपीलार्थी-न्यायिक अधिकारी को पहले आरोप का दोषी ठहराने का मुख्य आधार यह है कि अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के उन आदेशों पर ध्यान नहीं दिया जिन पर उच्च न्यायालय ने अभियुक्तों में से एक की जमानत याचिका को खारिज

कर दिया था। अधिकारी इस अर्थ में लापरवाही का दोषी हो सकता है कि उसने मामले की संचिका को सावधानीपूर्वक नहीं देखा और उच्च न्यायालय के आदेशों पर ध्यान नहीं दिया जो उसकी संचिका में था।इस लापरवाही को कदाचार नहीं माना जा सकता है। जाँच अधिकारी ने यह नहीं पाया कि जमानत देने का कोई बाहरी कारण था। जाँच अधिकारी वस्तुतः जमानत देने के आदेश में खामियाँ उठाते हुए अपील की अदालत के रूप में बैठ गया। [कंठिका 11] [869-एफ-एच; 870-ए]

2.2 जहाँ तक दूसरे आरोप का संबंध है, जिसमें यह आरोप लगाया गया था कि अपीलार्थी ने स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 के तहत एक विशेष न्यायाधीश के रूप में साक्ष्य को बंद कर दिया जिसके परिणामस्वरूप अभियुक्त बरी हो गया अदालत के दो लिपिकों के बयानों के आधार पर जांच अधिकारी ने लंबी टिप्पणी की है कि अपीलार्थी ने गवाहों की पेशी सुनिश्चित करने के लिए पुलिस अधीक्षक, जिला दंडाधिकारी और अन्य अधिकारियों को कोई संचार नहीं भेजा है। जाँच अधिकारी के अनुसार, अपीलार्थी को गवाहों को पेश करने के लिए वरिष्ठ अधिकारियों से संपर्क करने का प्रयास करना चाहिए था। दंड प्रक्रिया संहिता या एन. डी. पी. एस. अधिनियम में ऐसी किसी भी प्रक्रिया का प्रावधान नहीं है। गवाहों की पेशी अभियोजन पक्ष का कर्तव्य है।वर्तमान मामले में, लोक अभियोजक ने दैनिक आदेश-पत्रक के पक्ष में एक नोट बनाया था कि वह गवाहों की पेशी में असमर्थ है इसलिए सबूतों को बंद किया जाए।अपीलार्थी को कदाचार का दोषी ठहराते हुए लोक अभियोजक के बयान का कोई संदर्भ नहीं दिया गया है। अपीलार्थी ने एन. डी. पी. एस. मामले में अभियोजन पक्ष को गवाहों को पेश करने के लिए 18 स्थगन दिए थे।ऐसा न्यायिक अधिकारी असमंजस की स्तिथि के बीच होता है। यदि वह स्थगन देना जारी रखता है तो उच्च न्यायालय उसके खिलाफ इस आधार पर कार्रवाई करेगा कि वह अपने मामलों का कुशलता से निपटारा नहीं करता है और यदि वह सबूत बंद कर देता है तो उच्च न्यायालय इस आधार पर कार्रवाई करेगा कि उसने आरोपी को छोड़ दिया है। [कंठिका 14,15] [870-एफ-एच; 871-बी-सी]

<u>मामला कानून संदर्भ</u>

[1988] 1 पूरक एससीआर 396 कंडिका 5 पर आधारित

[1992] 2 एससीआर 364	कंडिका 6	पर आधारित
[1993] 1 एस. सी. आर. 296	कंडिका 6	पर आधारित
[2001] 1 पूरक एससीआर 369	कंडिका 6	पर आधारित
[2007] 3 एससीआर 198	कंडिका 7	पर आधारित

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: दीवानी अपील सं. 8950/2011

दीवानी याचिका अधिकारिता वाद संख्या 3719/2009 में पटना उच्च न्यायालय के दिनांकित 05.10.2009 के निर्णय एवं आदेश से

ब्रज किशोर मिश्रा, सुश्री अपर्णा झा, सुश्री कृति एस, अभिषेक यादव, अधिवक्तागण अपीलार्थियों के लिए।

संजय जैन, ए. एस. जी., प्रवीण एच. पारेख, वरिष्ठ अधिवक्ता, योगेश पचौरी, सुश्री बीनू टम्टा, सुश्री अनिल कटियार, क्षत्रशाल राज, निखिल रामदेव, सुश्री तान्या चौधरी, सुश्री प्रत्युषा प्रियदर्शी, मेसर्स पारेख एंड कंपनी, गोपाल सिंह, श्रीकांत एस., अधिवक्तागण उत्तरदाताओं के लिए।

न्यायालय का निर्णय दीपक गुप्ता, न्यायमूर्ति (मौखिक)

निर्णय

कानून के शासन का पालन करने वाले देश में न्यायपालिका की स्वतंत्रता परम पावन है। जब तक एक मजबूत, निर्भीक और स्वतंत्रता न्यायपालिका नहीं होगी, तब तक कानून का शासन नहीं हो सकता, लोकतंत्र नहीं हो सकता। यह स्वतंत्रता और निडरता न केवल उच्च न्यायालयों के स्तर पर बल्कि जिला न्यायपालिका से भी अपेक्षित है।

2. अधिकांश वादी केवल जिला न्यायपालिका के संपर्क में आते हैं। वे उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में आने का जोखिम नहीं उठा सकते। उनके लिए अंतिम शब्द दंडाधिकारी या ज्यादा से ज्यादा सत्र न्यायाधीश का होता है। इसलिए, समान रूप से महत्वपूर्ण है, यदि ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है कि जिला स्तर और तालुका स्तर पर

न्यायपालिका पूरी तरह से ईमानदार, निडर और किसी भी दबाव से मुक्त है और केवल संचिका पर तथ्यों के आधार पर मामलों का निर्णय करने में सक्षम है, किसी भी हलके के किसी भी दबाव से प्रभावित नहीं है।

3. भारत के संविधान के अनुच्छेद 235 में अधीनस्थ न्यायालयों का नियंत्रण उच्च न्यायालयों को सौंपा गया है। उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायालयों पर अनुशासनिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं। अनेक निर्णयों में इस न्यायालय ने कहा है कि उच्च न्यायालय न्यायाधीशों के संरक्षक और अभिभावक भी हैं जो उनके प्रशासनिक नियंत्रण में आते हैं। समय-समय पर इस न्यायालय ने उन मानदंडों को निर्धारित किया है जिन पर न्यायिक अधिकारियों के खिलाफ कार्रवाई की जानी चाहिए। बार-बार, इस न्यायालय ने उच्च न्यायालयों को आगाह किया है कि न्यायिक अधिकारियों के खिलाफ केवल गलत आदेश पारित करने के कारण कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए।गलती करना मानवीय है और हम में से कोई भी, जो न्यायिक पद पर रहा है, यह दावा नहीं कर सकता कि हमने कभी गलत आदेश पारित नहीं किया है।

4. इसमें कोई संदेह नहीं है कि भ्रष्टाचार के प्रति शून्य सहनशीलता होनी चाहिए और यदि भ्रष्टाचार, कदाचार या न्यायिक अधिकारी के रूप में अनुपयुक्त कार्यों के आरोप हैं तो उनसे कड़ाई से निपटा जाना चाहिए। हालांकि, यदि गलत आदेश पारित किए जाते हैं तो अनुशासनात्मक कार्रवाई तब तक नहीं की जानी चाहिए जब तक कि इस बात का सबूत न हो कि गलत आदेश बाहरी कारणों से पारित किये गये है, न कि संचिका पर कारणों के कारण।

5. हम बहुत सारे निर्णयों का उल्लेख नहीं करना चाहते क्योंकि यह स्थिति बड़ी संख्या में मामलों में निर्धारित की गई है, लेकिन ईश्वर चंद जैन बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय और एक अन्य मामले में इस न्यायालय की टिप्पणियों का उल्लेख करना उचित होगा, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दियाः

> “14. संविधान के तहत उच्च न्यायालय का अधीनस्थ न्यायपालिका पर नियंत्रण है।उस नियंत्रण का प्रयोग करते समय न्यायिक अधिकारियों का मार्गदर्शन और संरक्षण करना एक संवैधानिक दायित्व है। एक ईमानदार

सख्त न्यायिक अधिकारी के मुफस्सिल अदालतों में विरोधी होने की संभावना है। यदि न्यायिक आदेशों से संबंधित तुच्छ मामलों पर शिकायतों पर विचार किया जाता है, जिन्हें उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक पक्ष में बरकरार रखा जा सकता है, तो कोई भी न्यायिक अधिकारी सुरक्षित महसूस नहीं करेगा और उसके लिए ईमानदारी और स्वतंत्रता तरीके से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना मुश्किल होगा। एक स्वतंत्रता और ईमानदार न्यायपालिका कानून के शासन के लिए अनिवार्य है। यदि न्यायिक अधिकारियों को तुच्छ मामलों में शिकायत और जांच की लगातार धमकी दी जा रही है और यदि उच्च न्यायालय गुमनाम शिकायतों को क्षेत्र बनाए रखने के लिए प्रोत्साहित करता है तो अधीनस्थ न्यायपालिका स्वतंत्रता और ईमानदार तरीके से न्याय का प्रशासन नहीं कर पाएगी। इसलिए यह जरूरी है कि उच्च न्यायालय को भी अपने ईमानदार अधिकारियों को बचाने के लिए कदम उठाने चाहिए और बेईमान वकीलों और वादियों द्वारा की गई गलत धारणा या प्रेरित शिकायतों की अनदेखी करनी चाहिए।वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमारे मन में कोई संदेह नहीं है कि बार एसोसिएशन द्वारा अपीलार्थी के खिलाफ पारित प्रस्ताव पूरी तरह से अनुचित था और श्री महलावत और अन्य द्वारा की गई शिकायतें प्रेरित थीं जो किसी भी श्रेय के लायक नहीं थीं। यहां तक कि सतर्कता न्यायाधीश ने जांच करने के बाद कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया कि अपीलार्थी किसी भ्रष्ट उद्देश्य का दोषी था या उसने न्यायिक रूप से कार्य नहीं किया था। उनके खिलाफ केवल इतना कहा गया कि उन्होंने स्थगन देने में अनुचित कार्य किया था।"

6. इसके पश्चात्, भारत संघ और अन्य बनाम ए. एन. सक्सेना और भारत संघ और अन्य बनाम के. के. धवन 3 में अधिकथित उक्ति का अनुसरण करते हुए, इस न्यायालय ने पी. सी. जोशी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया हैः

"7. वर्तमान मामले में, हालांकि जांच अधिकारी द्वारा विस्तृत जांच की गई है, लेकिन एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए न्यायिक पक्ष पर अपीलार्थी द्वारा दिए गए प्रत्येक आदेश की जांच के अलावा शायद ही कोई सामग्री सामने आती है। यह कि तथ्यों के एक सेट पर एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचने की संभावना थी, किसी न्यायिक अधिकारी को एक दृष्टिकोण अपनाने के लिए और वह भी केवल उस कारण से कथित कदाचार के लिए अभ्यारोपित करने का कोई आधार नहीं है.जांच अधिकारी को कोई अन्य सामग्री नहीं मिली है, जो उसकी प्रतिष्ठा या सत्यनिष्ठा या अच्छे विश्वास या कर्तव्य के प्रति समर्पण को दर्शाती हो या वह किसी भी भ्रष्ट उद्देश्य से प्रेरित हो।अधिक से अधिक वह कह सकता है कि अपीलार्थी द्वारा लिया गया दृष्टिकोण उचित या सही नहीं है और उसे ऐसा कोई कारण नहीं देता है जो इस तरह से कार्य करने के लिए बाहरी विचार के लिए है। यदि ऐसे प्रत्येक मामले में, जहां अधीनस्थ न्यायालय का कोई आदेश दोषपूर्ण पाया जाता है, अनुशासनात्मक कार्रवाई शुरू की जाती है, तो अधीनस्थ न्यायपालिका का विश्वास हिल जाएगा और अधिकारियों को निर्णय लिखने का लगातार डर सताएगा ताकि अनुशासनात्मक जांच का सामना न किया जा सके और इस प्रकार न्यायिक अधिकारी स्वतंत्र रूप से या निडर होकर कार्य नहीं कर सकते। बेशक ये सचेत करने वाले शब्द के. के. धवन मामले और ए. एन. सक्सेना मामले में दिया गया था कि केवल इसलिए कि आदेश गलत है या की गई कार्रवाई अलग हो सकती थी, न्यायिक अधिकारी के खिलाफ अनुशासनिक कार्यवाही शुरू करने की आवश्यकता नहीं है। इस तरह की सावधानी के बावजूद, यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि उच्च न्यायालय ने इस मामले में अपीलकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने का निर्णय लिया है।

7. रमेश चन्द्र सिंह बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय और एक अन्य वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने, ऊपर निर्दिष्ट प्राधिकारियों सहित, इस

विषय पर संपूर्ण विधि पर विचार करने के पश्चात्, जिला न्यायपालिका के अधिकारियों के विरुद्ध केवल इसलिए अनुशासनिक कार्यवाही आरंभ करने की पद्धति को स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया क्योंकि उनके द्वारा पारित निर्णय/आदेश गलत हैं।यह इस प्रकार आयोजित किया गयाः-

> "12. इस न्यायालय ने कई अवसरों पर अधीनस्थ न्यायपालिका के अधिकारियों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने की प्रथा को केवल इसलिए अस्वीकार किया है क्योंकि उनके द्वारा पारित निर्णय/आदेश गलत हैं। अपीलीय और पुनरीक्षण न्यायालयों की स्थापना की गई है और ऐसे आदेशों को रद्द करने की शक्तियां दी गई हैं। अपील सुनने के बाद उच्च न्यायालय निचली अदालतों के गलत फैसलों को संशोधित या रद्द कर सकते हैं।न्यायिक आदेशों के आधार पर अनुशासनात्मक कार्रवाई करते समय उच्च न्यायालय को अतिरिक्त सावधानी और सतर्कता बरतनी चाहिए।
>
> xxx xxx xxx
>
> '17. जुंजरराव भीकाजी नागरकर बनाम यूनियन ऑफ इंडिया में इस न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि किसी अर्ध न्यायिक प्राधिकारी द्वारा अधिकार क्षेत्र का गलत प्रयोग या कानून की गलती या कानून की गलत व्याख्या अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का आधार नहीं हो सकता है। निश्चित रूप से, यदि न्यायिक अधिकारी इस तरह से संचालित होता है जो उसकी प्रतिष्ठा या ईमानदारी या सद्भावना को प्रतिबिंबित करता है या अपने कर्तव्यों के निर्वहन में लापरवाही या कदाचार दिखाने के लिए प्रथमदृष्टया सामग्री होती है या उसने किसी पार्टी के पक्ष में अनुचित रूप से काम किया था या पारित किया था। भ्रष्ट उद्देश्य से कार्यान्वित आदेश, उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 235 के अधीन अपनी शक्ति के आधार पर अपनी पर्यवेक्षी अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है। तथापि, ऐसी परिस्थितियों में यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि सभी स्तरों पर

> न्यायाधीशों को भय या पक्षपात के बिना न्याय प्रदान करना होगा। प्रभावी न्यायिक प्रणाली के लिए निडरता और न्यायिक स्वतंत्रता बनाए रखना बहुत आवश्यक है। अधीनस्थ न्यायिक अधिकारियों के खिलाफ प्रतिकूल टिप्पणियां करना और उनके खिलाफ कड़ी अनुशासनात्मक कार्रवाई करना अंततः जमीनी स्तर पर न्यायिक प्रणाली को नुकसान पहुंचाएगा।"

8. इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि कोई न्यायिक अधिकारी ऐसी कार्यवाही करता है जिससे उसकी प्रतिष्ठा या अखंडता परिलक्षित होती है या अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते समय उसकी ओर से लापरवाही भरे कदाचार को दर्शाने वाली प्रथम दृष्टया सामग्री है तो उच्च न्यायालय अनुशासनिक मामले शुरू करने का हकदार होगा लेकिन ऐसी सामग्री आदेशों से स्पष्ट होनी चाहिए और उसे अनुशासनिक कार्यवाही के दौरान अभिलेख में भी रखा जाना चाहिए।

9. इस मामले के तथ्यों की बात करें तो अपीलकर्ता के खिलाफ दो आरोप हैं, जो एक न्यायिक अधिकारी था। ये आरोप इस प्रकार हैंः

<u>आरोप -1</u>

> आप, श्री कृष्ण प्रसाद वर्मा, अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश, छपरा के रूप में कार्य करते हुए।मैसर्स विश्वनाथ राय, श्योनाथ राय और प्रदीप राय को 11.7.2002 को छपरा (एम) खटरा थाना मामला संख्या 453/2000 पंजीकृत भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के तहत इस तथ्य के बावजूद कि इस माननीय न्यायालय द्वारा बिश्वनाथ राय की जमानत याचिकाओं को इस न्यायालय के आदेश दिनांक 27.3.2001 और 4.7.2001 के द्वारा आपराधिक विविध संख्या 34144/2000 और 15626/2001 को क्रमशः संख्या 3387/2001 और क्र. सं.संख्या 30563/2001 और प्रदीप राय की ओर से दिनांक 28.02.2001 सीआर.नंबर 3599/2001 के

आदेश द्वारा पहले खारिज कर दिया गया था, एस. टी. संख्या 514/2001 में जमानत प्रदान की।

आपकी ओर से उपर्युक्त कार्य कुछ बाहरी विचार का संकेत है जो घोर न्यायिक अनौचित्य, न्यायिक अनुशासनहीनता, ईमानदारी की कमी, घोर कदाचार और एक न्यायिक अधिकारी के अनुपयुक्त कार्य के बराबर है।

आरोप -2

आप, श्री कृष्ण थाना वर्मा, अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश, छपरा के रूप में कार्य करते हुए, राजू मिस्त्री को दोषमुक्त करने के इरादे से, मामला संख्या 15/2000 में मुख्य अभियुक्त के रूप में, नारकोटिक ड्रग्स और साइकोट्रोपिक पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 22,23 और 24 के तहत दर्ज किया गया मामला संख्या 137/2000 (2000 की जी. आर. संख्या 1569), जिसके परिणामस्वरूप, राजू मिस्त्री को बड़ी जल्दबाजी में बरी कर दिया गया, जिस पर 90 किलोग्राम चरस ले जाने वाली जीप चलाने का आरोप था।

आपका पूर्वोक्त कार्य कुछ बाहरी विचारों का संकेत है जो सकल न्यायिक अनौचित्य, न्यायिक अनुशासनहीनता, ईमानदारी की कमी, घोर कदाचार और एक न्यायिक अधिकारी के अनुपयुक्त कार्य के बराबर है।

10. जहां तक पहले आरोप का संबंध है, एक प्रमुख तथ्य, जिस पर जांच अधिकारी अनुशासनात्मक प्राधिकारी के और उच्च न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया था कि अतिरिक्त लोक अभियोजक, जो उपस्थित हुए थे, राज्य की ओर से जमानत मंजूर करने के लिए अभियुक्त की प्रार्थना का विरोध नहीं किया था। यदि लोक अभियोजक जमानत का विरोध नहीं करता है तो सामान्यतः कोई न्यायाधीश जमानत मंजूर करेगा।

11. अपीलार्थी को प्रथम आरोप का दोषी ठहराने का मुख्य आधार यह है कि अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के आदेशों पर ध्यान नहीं दिया जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने दिनांक 26.11.2001 के आदेश द्वारा एक अभियुक्त के जमानत आवेदन को नामंजूर कर

दिया था। यह उल्लेख करना उचित होगा कि उच्च न्यायालय ने स्वयं यह मत व्यक्त किया कि आरोपों की विरचना के पश्चात् यदि गैर-सरकारी साक्षियों की परीक्षा नहीं की जाती है तो जमानत के लिए प्रार्थना को हटाया जा सकता है किंतु पहले निचले न्यायालय में जाने के पश्चात्। अधिकारी इस अर्थ में लापरवाही का दोषी हो सकता है कि उसने मामले की संचिका को सावधानीपूर्वक नहीं देखा और उच्च न्यायालय के आदेश पर ध्यान नहीं दिया जो उसकी संचिका में था। इस लापरवाही को कदाचार नहीं माना जा सकता। यह उल्लेख करना उचित होगा कि जांच अधिकारी ने यह नहीं पाया है कि जमानत मंजूर करने के लिए कोई बाहरी कारण था.जांच अधिकारी वास्तव में जमानत मंजूर करने वाले आदेश में खामियां निकालने के लिए अपील न्यायालय के रूप में बैठा था।

12. यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण होगा कि यह प्रतीत होता है कि बाद में अपीलार्थी के संज्ञान में लाया गया कि उसने 11.07.2002 को जमानत मंजूर करते समय उच्च न्यायालय के आदेश पर ध्यान नहीं दिया था। इसके बाद उन्होंने दिनांक 23.08.2002 को सभी तीनों अभियुक्तों को, अर्थात् दो महीने से भी कम समय के भीतर, नोटिस जारी किया गया और 11.07.2002 को तीनों अभियुक्तों को दी गई जमानत रद्द कर दी गई।यदि उसने पूरी संचिका न देखने की गलती की थी, तो उसके संज्ञान में लाए जाने पर, उसने गलती को सुधारा। अपीलार्थी द्वारा जमानत रद्द करने और अभियुक्तों को फिर से गिरफ्तार करने के बाद, उन्होंने फिर से जमानत के लिए आवेदन किया और यह जमानत आवेदन अपीलार्थी द्वारा 18.12.2002 को नामंजूर कर दिया गया।

13. अभियुक्त के जमानत आवेदन को नामंजूर किए जाने के बाद, तीन में से दो अभियुक्तों ने उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। उच्च न्यायालय ने एक अभियुक्त को जमानत प्रदान की और दूसरे की जमानत अर्जी गुणागुण के आधार पर नहीं बल्कि इस आधार पर नामंजूर कर दी गई कि उसने इस तथ्य का खुलासा नहीं किया कि उसने पहले जमानत की मंजूरी के लिए उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था। यह स्वयं इस तथ्य का स्पष्ट संकेत है कि संभवतः अपीलार्थी द्वारा पारित आदेश भी गलत नहीं है।

14. दूसरे आरोप का उल्लेख करते हुए, जो स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'एनडीपीएस' कहा गया है) के अधीन है।

18.07.2002 को अपीलार्थी, एक विशेष न्यायाधीश ने अभियोजन के साक्ष्य को बंद कर दिया जिसके परिणामस्वरूप तात्विक गवाहों की परीक्षा नहीं की गई और परिणामस्वरूप अभियुक्त को बरी कर दिया गया। जहां तक इस आरोप का संबंध है, जांच अधिकारी ने न्यायालय के दो लिपिकों के बयानों के आधार पर लंबी टिप्पणियां की हैं कि अपीलकर्ता ने गवाहों की पेशी सुनिश्चित करने के लिए पुलिस अधीक्षक, जिलाधिकारी और अन्य प्राधिकारियों को कोई सूचना नहीं भेजी थी। जांच अधिकारी के अनुसार, यह एक गंभीर मामला है, इसलिए साक्ष्य को बंद नहीं किया जाना चाहिए था और अपीलकर्ता को गवाहों को पेश करने के लिए वरिष्ठ अधिकारियों से संपर्क करने का प्रयास करना चाहिए था। दंड प्रक्रिया संहिता या एनडीपीएस अधिनियम में ऐसी किसी प्रक्रिया का प्रावधान नहीं है। गवाहों को पेश प्रस्तुत अभियोजन का कर्तव्य है। इस मामले में भी, दिलचस्प बात यह है कि लोक अभियोजक ने दैनिक आदेश पत्र के पक्ष में एक नोट लिखा था कि वह गवाहों को पेश प्रस्तुत में असमर्थ है, इसलिए सबूत बंद किए जा सकते हैं। हम यह समझने में विफल हैं कि अपीलकर्ता को कैसे फांसी दी गई है जबकि संबंधित लोक अभियोजक के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गई है या कोई सिफारिश नहीं की गई है। हम यह नोट करने के लिए विवश हैं कि जांच अधिकारी ने, दोषी अधिकारी की दलीलों पर विचार करते हुए, नोट किया है कि उसने एक अभिवाक किया था कि उसने साक्ष्य को बंद कर दिया था क्योंकि लोक अभियोजक ने बयान दिया था, लेकिन अपीलार्थी को कदाचार का दोषी ठहराते हुए लोक अभियोजक के बयान का कोई संदर्भ नहीं दिया गया है।

15. हम यह भी नोट कर सकते हैं कि अपीलार्थी का मामला यह है कि उसने न्यायालय में पेश होने के लिए 18 स्थगन दिए थे। ऐसा न्यायिक अधिकारी डैविल और गहरे समुद्र के बीच होता है। यदि वह स्थगन देता रहेगा तो उच्च न्यायालय इस आधार पर उसके खिलाफ कार्रवाई करेगा कि वह अपने मामलों को कुशलता से निपटाता नहीं है और यदि वह साक्ष्य बंद कर देता है तो उच्च न्यायालय इस आधार पर कार्रवाई करेगा कि उसने आरोपी को छोड़ दिया है। यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 235 का उद्देश्य नहीं है। यही कारण है कि हम एक बार फिर दोहराते हैं कि प्रशासनिक पक्ष में उच्च न्यायालय की एक जिम्मेदारी यह सुनिश्चित करना है कि जिला न्यायपालिका की स्वतंत्रता बनी रहे और उच्च न्यायालय जिला न्यायपालिका के अभिभावक और संरक्षक के रूप में कार्य करे।

16. तथापि, हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि हम किसी भी रूप में यह संकेत नहीं दे रहे हैं कि यदि कोई न्यायिक अधिकारी गलत आदेश पारित करता है तो कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी। यदि कोई न्यायिक अधिकारी ऐसे आदेश पारित करता है जो स्थापित कानूनी मानदंडों के विरुद्ध हैं, लेकिन ऐसे आदेश पारित करने के लिए किसी बाहरी प्रभाव का कोई आरोप नहीं है, तो उच्च न्यायालय को जो उचित कार्रवाई करनी चाहिए वह यह है कि वह ऐसी सामग्री को प्रशासनिक पक्ष पर अभिलिखित करे और इसे संबंधित न्यायिक अधिकारी के सेवा अभिलेख में रखे।संबंधित न्यायिक अधिकारी के करियर की प्रगति पर विचार करते समय इन मामलों को ध्यान में रखा जा सकता है। एक बार गलत आदेश का नोट ले लिया जाता है और वे सेवा रिकॉर्ड का हिस्सा बन जाते हैं तो इन्हें चयन ग्रेड, प्रोन्नति आदि को अस्वीकार करने पर विचार करने के लिए लिया जा सकता है और यदि गलत या अवैध आदेशों का निरंतर प्रवाह होता है तो उचित कार्रवाई नियमों के अनुसार न्यायिक अधिकारी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करना होगा।हम फिर से दोहराते हैं कि जब तक कदाचार, बाहरी प्रभाव, किसी भी प्रकार की संतुष्टि आदि के स्पष्ट आरोप नहीं होते हैं, तब तक अनुशासनात्मक कार्यवाही केवल इस आधार पर शुरू नहीं की जानी चाहिए कि न्यायिक अधिकारी द्वारा गलत आदेश पारित किया गया है या केवल इस आधार पर कि न्यायिक आदेश गलत है।

17. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हम अपील की अनुमति देते हैं, उच्च न्यायालय के निर्णय को रद्द करते हैं और अपराधी अधिकारी के खिलाफ पारित सभी आदेशों को रद्द करते हैं।उन्हें 31.12.2019 को या उससे पहले सभी पारिणामिक लाभ दिए जाने का निर्देश दिया जाता है। अपील की 25,000/- रुपए की अर्थदण्ड के साथ अनुमति दी जाती है।

(दीपक गुप्ता, न्यायमूर्ति)

(अनिरुद्ध बोस, न्यायमूर्ति)

नई दिल्ली

26 सितंबर, 2019

12 आइटम संख्या 103 न्यायालय संख्या 13 खण्ड Xvi

भारत का उच्चतम न्यायालय

सिविल अपील संख्या (ओं) 8950/2011

श्री कृष्ण प्रसाद वर्मा (डी) द्वारा एलआरएस अपीलकर्ता (ओं)

बनाम

बिहार राज्य और अन्य प्रतिवादी (ओं)

तिथि:26-09-2019 यह अपील आज सुनवाई के लिए बुलाई गई थी।

द्वाराः	माननीय न्यायमूर्ति श्री दीपक गुप्ता
	माननीय न्यायमूर्ति श्री अनिरुद्ध बोस
अपीलकर्ता (ओं) के लिए	श्री ब्रज किशोर मिश्रा, अधिवक्ता
	सुश्री अपर्णा झा, एओआर
	सुश्री कृति एस., अधिवक्ता
	श्री अभिषेक यादव, अधिवक्ता
उत्तरदाता (ओं) के लिए	श्री संजय जैन, एएसजी
	श्री योगेश पचौरी, अधिवक्ता
	सुश्री बीनू टम्टा, अधिवक्ता
	सुश्री अनिल कटियार, एओआर
	श्री प्रवीण एच. पारेख, वरिष्ठ अधिवक्ता
	श्री क्षत्रिय राज, अधिवक्ता

श्री निखिल रामदेव, अधिवक्ता

सुश्री तान्या चौधरी, अधिवक्ता

सुश्री प्रत्यूषा प्रियदर्शी, अधिवक्ता

मैसर्स पारेख एंड कंपनी, एओआर

श्री गोपाल सिंह, एओआर

श्री श्रीकांत एस, अधिवक्ता

न्यायालय ने वकील की सुनवाई करने के बाद निम्नलिखित आदेश पारित किया

अपील को हस्ताक्षरित रिपोर्ट योग्य निर्णय के संदर्भ में अनुमति दी जाती है।

लंबित आवेदनों, यदि कोई हो, का निपटारा किया जाता है।

(अर्जुन बिट)
कोर्ट मास्टर (एसएच)

(रेनू कपूर)
शाखा अधिकारी

(हस्ताक्षरित रिपोर्ट योग्य निर्णय संचिका पर रखा गया है)

खण्डन (डिस्क्लेमर) :– स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।